Rajasthan Journal of Sociology

ISSN 2249-9334

Volume 6 • October 2014

Bilingual Journal of Rajasthan Sociological Association

समाजशास्त्र : वर्तमान के संकट और भविष्य की संभावनाएं
योगेन्द्र सिंह के साथ बातचीत

भूपेन्द्र कुमार नागला

भारतीय सामाजिक परिवर्तन, आधुनिकता और परम्परा, भारतीय समाजिक संरचना और भारतीय समाजशास्त्रीय समीक्षा के संदर्भ आवश्यक रूप से योगेन्द्र सिंह के साथ जुड़ते हैं। भारतीय समाजशास्त्र में गंभीर चिन्तन और तात्कालिक समस्याओं पर उनकी समीक्षाएं समाजशास्त्रीय साहित्य में अमर कृतियां हैं। समाजशास्त्र के हाल के शोध कार्यों में उनके सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्यों का विश्लेषण भी किया गया है। आज के समाजशास्त्रियों में वे अग्रज समाजशास्त्री हैं। हम उन्हें सैद्धान्तिक, अवधारणात्मक अथवा बंद सोच में कहीं बांधना नहीं चाहते। कुछ समय पहले भूपेन्द्र कुमार नागला ने *राजस्थान जर्नल ऑफ सोश्योलॉजी* के लिये उनसे वार्तालाप किया था। किसी भी अन्य समाजशास्त्री की तरह उनकी भी जिज्ञासा थी कि योगेन्द्र सिंह आज क्या सोचते हैं? भारत में समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्यों पर उनकी क्या सोच है? वे राजस्थान में भी रहे हैं तो उनके राजस्थानी समाज के बारे में क्या दृष्टिकोण हैं? इन्हीं प्रश्नों को लेकर नागला ने सिंह के साथ वार्तालाप किया। दिल्ली में किये गए इस वार्तालाप की प्रस्तुति शायद किन्हीं नये अर्थों को उभार दे या संभवतः यह किसी नई दिशा का परिचायक हो, इन्हीं मन्तव्यों के साथ वार्तालाप प्रस्तुत है।

जीवन परिचय

एक नवम्बर 1932 को जन्मे योगेन्द्र सिंह की प्रारंभिक शिक्षा बस्ती (उत्तर प्रदेश) में हुई। इन्टरमीडिएट करने के बाद लखनऊ विश्वविद्यालय से उन्होंने अंग्रेजी, हिन्दी साहित्य तथा अर्थशास्त्र विषयों के साथ स्नातक की उपाधि ली। स्नातकोत्तर उपाधि के लिये उन्होंने अंग्रेजी साहित्य चुना पर असंतुष्ट हो वे डी. पी. मुखर्जी के पास गए। उन दिनों समाजशास्त्र का अध्ययन एक पृथक विषय के रूप में नहीं होता था। मुखर्जी ने उन्हें अर्थशास्त्र विषय में प्रवेश दे दिया। अर्थशास्त्र के 'ब' समूह में उन्हें प्रवेश मिला जो पूर्णतः अर्थशास्त्र नहीं था, उसमें समाजशास्त्र सहित कई अन्य विषयों के पाठ्यक्रम भी थे। इस प्रकार सिंह ने एम.ए. की उपाधि अर्थशास्त्र में 1955 में ली। अपनी विद्यावाचस्पति की उपाधि भी उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में 1958 में ली। विद्यावाचस्पति की उपाधि के लिए शोध कार्य हेतु उनके पर्यवेक्षक बलजीत सिंह थे। सिंह का यह अध्ययन जमींदारी व्यवस्था पर था।

तत्कालीन कुलपति आचार्य नरेन्द्र देव ने लखनऊ विश्वविद्यालय में मानवशास्त्र विभाग खोला। डी.एन. मजूमदार उसके विभागाध्यक्ष बने। लखनऊ विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र का अध्ययन 1958 से प्रारम्भ हुआ जिसके प्रथम अध्यक्ष सुशील चन्द्र थे। विद्याचास्पति की उपाधि प्राप्त करने के बाद सिंह डुमरियागंज के इन्टर कालेज में व्याख्याता बने। वहां उन्हें एक सौ पचास रूपये मासिक वेतन मिलता था। दो–तीन महीने बाद बलजीत सिंह ने उन्हें शोधकर्ता के रूप में लखनऊ विश्वविद्यालय में बुला लिया। 1959 में उनकी नियुक्ति इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज आगरा में हुई। निदेशक आर.एन. सक्सेना शान्तिप्रिय व्यक्ति थे। सिंह को लोग कहते थे कि उनके लिए आगरा के स्थान पर लखनऊ उचित स्थान है। आगरा में ही उस समय समाजशास्त्र के श्रेष्ठ शिक्षकों को तैयार करने के लिए एक कार्यशाला आयोजित की गई थी जिसमें एडवर्ड शील और टॉम बोटामोर उपस्थित थे। भारत के अन्य ख्यातिप्राप्त समाजशास्त्री जैसे आई.पी. देसाई, ए.आर. देसाई और आंद्रे बिताई भी कार्यशाला में सम्मिलित थे। सिंह पर इस कार्यशाला का गहरा प्रभाव पड़ा। 1961 में वे राजस्थान विश्वविद्यालय में व्याख्याता पद पर आए और 1969 तक यहीं रीडर के पद पर कार्य करते रहे। अपने संस्मरण व्यक्त करते हुए सिंह बताते हैं कि जयपुर के प्रति उनका विशिष्ट आकर्षण था। जयपुर में ही इन्द्रदेव उनके साथ रहे।

जयपुर प्रवास के दौरान ही उनकी मुलाकात मैकगिल विश्वविद्यालय की एलीन डी. रॉस से हुई जिन्होंने सिंह को मैकगिल विश्वविद्यालय आने का निमंत्रण दिया। 1966 में वे मैकगिल चले गये जहां वे भारतीय समाजशास्त्र पर शोध और अध्ययन करते रहे। वहीं उन्होंने अपनी विशिष्ट कृति *माडर्नाइजेशन ऑफ इंडियन ट्रेडिशन* लिखी। 1967–68 के बीच वे स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय में एक वर्ष के लिये में फुलब्राइट फेलो भी रहे । स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय का समाजशास्त्र पार्सन्स के विचारों से प्रभावित था और टालकट पार्सन्स के कई विद्यार्थी जैसे रिचार्ड कोहेन, डी. ब्रुश आदि वहां अध्ययन कर रहे थे। विश्वविद्यालय का समाजशास्त्र विशुद्ध गणितीय मॉडल का था। योगेन्द्र सिंह मानवशास्त्र विभाग की ओर अधिक आकर्षित हुए जहां भारत के समाजशास्त्र पर कार्य चल रहा था। वहीं वे लुई हर्सकोविट्ज से भी मिले। राजस्थान विश्वविद्यालय में दस वर्ष रहने के बाद वे जोधपुर विश्वविद्यालय में प्रोफेसर बने। 1971 में वे जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय चले गए।

योगेन्द्र सिंह अपने संस्मरणों में बताते हैं कि जब वे जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में कुलपति पार्थसारथी से मिलने गए तो उनकी मेज पर सिंह द्वारा लिखित तीन पुस्तकें मौजूद थीं। पहले वे समाज विज्ञान के सदस्य के रूप में रहे पर बाद में उन्हें सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ सोशल सिस्टम का चेयरमैन बना दिया गया। सेवानिवृत्ति के बाद सिंह जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में प्रोफेसर एमरेट्स रहे। अभी वे दिल्ली में निवास करते हैं। भारतीय समाजशास्त्र, परम्परा, आधुनिकीकरण और सांस्कृतिक परिवर्तन पर उनकी अनेक रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। उन्हें स्वामी परमानंद और राष्ट्रीय नेहरू पुरस्कार से सम्मानित किया गया। मैक्सिको, मोस्को, मान्ट्रियल, लेनिनग्राद, बीजिंग, टोक्यो, बोस्टन, होनोलूलू, मनीला, पेरिस, बर्लिन, फेबर्ग, बार्सीलोना और रोम में उन्होंने विविध सम्मेलनों को संबोधित भी किया। भारत सरकार के कई मंत्रालयों के वे सलाहकार रहे। योगेन्द्र सिंह अपार ज्ञान एवं समझ के प्रतिनिधि समाजशास्त्री हैं।

वर्तमान समाजशास्त्र

जैसा कि हम जानते हैं, समाजशास्त्र यूरोप और अमेरिका में सामाजिक परिवर्तनों तथा सामाजिक आन्दोलनों के सन्दर्भ में बौद्धिक प्रत्युत्तरों के कारण विकसित हुआ था। औद्योगिक क्रान्ति पैदा होने के कई कारण थे। तकनीकी विकास, नवाचार, धर्म निरपेक्षता की चुनौतियां, चर्च को दी जाने वाली चुनौती और नये औद्योगिक सर्वहारा वर्ग का जन्म, सभी कुछ औद्योगिक क्रान्ति के साथ जुड़ा हुआ था। जो कुछ परिवर्तन हो रहा था, उसमें समाज की नई विश्वदृष्टि, बुर्जुआजी तथा नये मध्यम वर्गों का प्रादुर्भाव नये श्रमहित सम्मिलित थे और बोद्धिक वर्ग का उदय–सभी कुछ समाजशास्त्र को उभार रहा था। यदि ध्यान से देखें तो यूरोपियन–अमेरिकन समाजशास्त्र की विषयवस्तु तथा पद्धति को ये तथ्य ही प्रभावित कर रहे थे। समाजशास्त्र में जो कुछ भी विमर्श चल रहा था, उसमें समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र के रिश्तों पर बहस भी शामिल थी। हमारे उपनिवेशीय स्वामी मानवशास्त्र से अधिक प्रभावित थे। भारत में इन दोनों ही विषयों का समन्वित स्वरूप स्थापित हुआ। यहां इन दोनों विषयों का अपभाव नहीं अपितु संयोजन था।

भारत में समाजशास्त्र की छवि सामाजिक परिवर्तन की चुनौतियों के साथ जुड़े विषय के रूप में स्थापित थी। अधिकांश परिवर्तन उपनिवेशवादी काल में प्रारम्भ हुए। हांलाकि इन परिवर्तनों में उपनिवेशवादी हित निहित थे, लेकिन साथ ही इन प्रक्रियाओं ने भारत की सही समझ पैदा करने की कोशिश भी की।

सामाजिक परिवर्तनों के आंकलन की प्रक्रिया भी प्रारम्भ हुई। जनगणना की रिपोर्ट, भूमि सुधार की रिपोर्टों और ऐसी ही अन्य रिपोर्टों ने भारतीय समाज को समझने में मदद की। स्वतंत्र भारत में व्यापक सामाजिक परिवर्तनों के लिये ये जानकारियां महत्वपूर्ण सिद्ध हुईं। धीरे–धीरे समाजशास्त्र को बौद्धिक मान्यताएं मिलीं और विश्वविद्यालयों में इसे अध्ययन के लिये स्वीकार किया जाने लगा।

सत्यता यह है कि उस समय से आज तक समाजशास्त्र के परिवेश में परिवर्तन नहीं हुआ है। यह बात जरूर है कि समाजशास्त्रीय विमर्शों में कुछ बदलाव आया है। समाजिक प्रासंगिकताओं, यथार्थताओं और समाज की मांगों के नये आधारों की चर्चा होने लगी है। बदलते संदर्भों में परिवार तथा धार्मिक अध्ययन पीछे छूट गए हैं और दलित, जेण्डर, सामाजिक आन्दोलनों तथा इनके बदलते परिवेशों पर चर्चा अधिक होने लगी है। इनसे सन्दर्भ भी बदल रहे हैं। स्वाभाविक रूप में इन प्रक्रियाओं ने नई अवधारणाओं को जन्म दिया है, नवाचार हुए हैं और पद्धतियों का नया प्रभावीकरण हुआ है। प्रासंगिक परिवेशों को समझने के लिये नये आधार बने हैं। समाजशास्त्र का कलेवर आज इसी रूप में है।

वर्तमान में समाजशास्त्र वह विज्ञान है, जो संवाद (क्पंसवहनम) पर आधारित है। यह किताबी ज्ञान नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं कि समाजशास्त्र का किताबी साहित्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। सामाजिक विज्ञानों में वर्गीकृत विज्ञान जैसे राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र सभी पुस्तकीय ज्ञान के साथ जुड़े हुए हैं, लेकिन समाजशास्त्र की अपनी अस्मिता है। अध्ययन की पद्धति तथा उभरते नये आयामों में समाजशास्त्र एक नई परिपाटी के रूप में उभरा है।

पद्धति के प्रश्न

यह मान लेना चाहिये कि समाजशास्त्र का प्रारम्भ यूरोपियन समाज में हुआ था। फ्रांस में इसे प्रारंभ करने की पहली स्वीकृति मिली थी, बाद में ब्रिटिश विश्वविद्यालयों ने इसे स्वीकारा। विषय के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि प्रारंभ से ही इसके प्रति अनेक शंकाएं थीं। पहली तो इसकी पद्धति एक रूपी नहीं थी। ऐसी पद्धतियां अन्य सामाजिक विज्ञानों में नहीं थीं। समाजशास्त्र की पद्धतियां बहुस्तरीय तथा बहुआयामी थीं। पद्धतियों का उपयोग अध्ययन के ऐसे क्षेत्रों के लिये किया गया जो रोचक भी थे और अद्‌भुत भी। उदाहरण के लिये औद्योगिक क्रान्ति के बाद उभरती सामाजिक संरचना से हुआ सामाजिक विस्थापन और अलगाव। ये सब यूरोपियन समाज की समस्याएं थीं, जहां समाजशास्त्र विकसित हुआ था। आज के संदर्भ में भी इसकी झलक मिलती है। समाजशास्त्र के आदि रचियता मार्क्स, वैबर और दुरखाइम की रचनाएं इस पद्धति की बहुलता और बिडंबनाओं के प्रमाण हैं।

एक बड़ी शंका समाजशास्त्र में इतिहास के प्रयोग से जुड़ी हुई है। इतिहास का अध्ययन समयबद्ध है। यह कहा जाता है कि समाजशास्त्र समसामयिक समय से जुड़ा हुआ है, पर समसामयिक दृष्टि को देखने के लिये भी 'इतिहास बोध' की आवश्यकता है। समाजशास्त्र के वर्तमान विश्लेषण में भी यह इतिहासबोध कहीं न कहीं हुआ है। इतिहास की पृष्ठभूमि को समाजशास्त्र कहीं नकारता नहीं है। ऐसी पृष्ठभूमि को हम नज़रअन्दाज नहीं कर सकते। अब उभरने वाले समाजशास्त्र समसामयिक तत्वों और उसके परिवेशों में यह पृष्ठभूमि और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। वैश्विक स्तर पर भी समाजशास्त्री इस प्रकार की पद्धति का प्रयोग करने लगे हैं।

वर्तमान और समाजशास्त्र

आज की परिस्थितियां पूर्व परिस्थितियों से भिन्न हैं। वर्तमान समाजशास्त्र के मूल्यांकन के कई पक्ष हैं, इसमें भारत को भी जोड़ लिया जाए। वर्तमान में हो रहे परिवर्तन या रूपान्तरण के अध्ययन कोई नई पृष्ठभूमि प्रस्तुत नहीं करते। वस्तुतः नये किये जाने वाले अध्ययन पुरानी सोच और पुराने आधारों से अभिमुक्त नहीं हो पाए हैं। ऐसा नहीं है कि नये प्रयोग नहीं हुए हैं, पर ये प्रयोग शंकाओं से भरे हुए हैं, और इन नये प्रयोगों पर बहुत चर्चाएं भी नहीं हुई हैं। यदि इन नये संदर्भों को समझा जाए जो समाजशास्त्र की विषय वस्तु में होने वाले परिवर्तन भी निकलकर सामने आ जाएंगे, कहीं पुराने और नये परिवेशों के सामंजस्य की आवश्यकता है।

भारतीय समाजशास्त्र

प्रारम्भ से ही भारतीय समाजशास्त्र स्थापित सामाजिक संरचना और संस्कृति का अध्ययन करता

आया है। जाति, जनजाति और क्षेत्रीय समुदायों का अध्ययन, भारतीय समाजशास्त्र के लिये बहुत पुराने विषय हैं। उननिवेशवादी काल में जब से ब्रिटिश भारत आए, ऐसे समाजशास्त्रीय अध्ययनों को किया भी गया। सारा परिदृष्य, भाषा तथा रचना के रूप उसी परंपरा के साथ जुड़े हुए हैं। ऐसे अध्ययन यह मानते हैं कि परिवार और नातेदारी संरचना के आंतरिक तत्व हैं और इसी रूप में उनका अध्ययन किया जाता रहा है।

बदलते समय के साथ समाजशास्त्र की विषयवस्तु बदलती रही है। यह संभवतः इसलिये हुआ क्योंकि सामाजिक संरचना में नये स्वरूप उभर गए हैं। समकालीन समाजशास्त्री, पुराने विषयों से हटकर जाति में पहचान (Identity) के प्रश्न खड़ा कर रहा है। वैसे भी पहचान और उससे उभरती सामाजिक प्रतियोगिताएं एवं संघर्ष समाजशास्त्रीय अध्ययनों के विषय हो गए हैं।

इसी से सम्बन्धित अस्मिताओं के प्रश्न भी समाजशास्त्रियों के लिये उभर गए हैं। दलितों, जनजातियों, और महिलाओं की अस्मिता के प्रश्न व्यापक हो गए हैं। यदि अस्मिताओं के प्रश्न महत्वपूर्ण हैं तो फिर उनके लिये प्रयोग की जाने वाली अध्ययन पद्धतियों के प्रश्न भी महत्वपूर्ण हैं। बदलाव का मात्र यह एक नमूना है। ऐसे बदलाव भारतीय समाजशास्त्र के कई पक्षों में दिखाई देते हैं। समाजशास्त्रीय भाषा में भी परिवर्तन हुआ है। यह परिवर्तन नवलेखन में देखा जा सकता है। कई नये उप परिवेश भी उभरे हैं, उदाहरण के लिये स्त्री विषयक अध्ययन समाजशास्त्र की मुख्यधारा में शामिल हो गए हैं। समाजशास्त्र के मुख्य तत्वों में इन्हें भी सम्मिलित किया जाने लगा है। वैश्वीकरण व सूचना तकनीक क्रांति का असर भी भारतीय सामाजिक संरचना पर बहुत गहरा पड़ा है जिसके कारण इन विषयों पर अध्ययन भी बढ़े हैं।

जातियों, समुदायों और आप्रवासी भारतीय समाज की संरचनाओं में व्यापक परिवर्तन हुए हैं। आप्रवासी भारतीय जिन देशों में गए उन्होंने अपने को कैसे स्थापित किया और उनके भारतीय संदर्भ क्या हैं? आज के समाजशास्त्र के लिये यह विषय भी महत्वपूर्ण हो गया है। यह समाजशास्त्र के लिये नया ध्यान है।

समाजशास्त्र के अध्ययन अब मात्र क्षेत्रीय संकुचता के नहीं रह गए। अब अध्ययनों का एक व्यापक स्वरूप उभर रहा है। विषय वस्तु ही नहीं विचारों, परिकल्पनाओं और अध्ययन पद्धतियों को अब नई चुनौतियां मिल रही हैं। ये चुनौतियां सामान्य नहीं हैं। जैसे–जैसे संरचनात्मक जटिलताएं बढ़ती जाएंगी–चिन्ताएं बढ़ती जाएंगी। ऐसा माना जा सकता है कि फिलहाल भारतीय समाजशास्त्र एक बिखराब की ओर बढ़ रहा है या यह कहें कि यह बिखराब की स्थिति से गुजर रहा है। यह भी कहा जा सकता है कि वर्तमान समाजशास्त्र को एक सुनिश्चित पकड़ वाले, तुलनात्मक आधार पर किए गए अध्ययनों की आवश्यकता है।

भारतीय परम्परा तथा आधुनिकीकरण

भारतीय परम्पराओं का अधुनिकीकरण (*Modernization of Indian Tradition*) – पुस्तक के प्रकाशन के समय यानि चालीस वर्ष पहले देश एक बहुत बड़े परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। आधुनिकता के संबंध में बहुत कुछ कहा जा रहा था। उस समय समाज में परिवर्तन के अध्ययन के लिए आयातित सिद्धान्त और प्रतिमान सफल सिद्ध नहीं हो पा रहे थे। यदि देश में आधुनिकीकरण आ रहा था तो इस बदलाव को समझने और विश्लेषण करने के लिए भारतीय समाजशास्त्र को एक मानक पुस्तक की आवश्यकता थी। यह पुस्तक इसी प्रेरणा का एक प्रयास था। यही प्रेरणा इस पुस्तक के लेखन और प्रकाशन में परिलक्षित हुई। अनेक वर्षों के पठन – पाठन और अध्ययन ने इस लेखन में सहायता दी। परिवर्तन की धाराओं के गूढ़ आधारों को समझने का यह प्रयास था।

आधुनिकीकरण, परिवर्तन की दृष्टि से एक दिशा में चलने वाली शक्ति नहीं थी। इसके कई आयाम थे। इसे भारत में परम्पराओं से सामना करना पड़ रहा था। दोनों के इस पारम्परिक टकराव ने कई समस्याओं और संभावनाओं को जन्म दे दिया था। कई नई प्रक्रियाएं भी उभर गई थीं। इन सारी परिस्थितियों को समग्र रूप से समझने के नये प्रतिमानों और सैद्धान्तिक आधारों की भी आवश्यकता थी। इस पुस्तक के माध्यम से उन्हीं नये प्रतिमानों और सैद्धान्तिक आधारों को हासिल करने का प्रयत्न किया गया। इसका पूरक आधार हाल में प्रकाशित पुस्तक *टुवर्डस अन्डरस्टेंडिंग ऑफ इंडियन ट्रेडिशन* (*Towards Understanding of Indian traditions*) के रूप में दिखाई देता है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में आयोजित एक सम्मेलन में इस विषय पर व्यापक चर्चा हुई थी।

राजस्थान

सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना के भारतीय परिप्रेक्ष्य राजस्थान पर भी लागू होते हैं। इन्हीं आधारों पर राजस्थान का समाजशास्त्रीय मूल्यांकन भी हो सकता है। राजस्थान में अन्य क्षेत्रों की तुलना में विशिष्ट संस्थाओं का पुट मौजुद है। इनमें सबसे पहले आते हैं – सामन्तवादी संरचना और उसका प्रभाव। इस दृष्टि से और ऐतिहासिक दृष्टि से राजस्थान कई इकाइयों में अलग–अलग व्यवस्थाओं के रूप में विकसित होता रहा है। सामंतवाद के साथ जातियों और जनजातियों की अपनी संरचनाएं भी विकसित हुई हैं। यह राजस्थान के विभिन्न हिस्सों में समय–समय पर उभरे सामाजिक आन्दोलनों से परिलक्षित होता है। ऐसे आन्दोलन करीब–करीब राजस्थान के हर क्षेत्र में विकसित हुए। ये आन्दोलन सामंतवादी व्यवस्था के विरूद्ध थे। इनके साथ जातीय क्षेत्रीयता के प्रश्न भी जुड़े हुए थे। जाट एक कृषक जाति है, पर जाट और गैर–जाटों के सम्बन्ध चुनौती भरे रहे हैं।

भील जनजाति की विकास योजनाओं ने जनजाति संरचना में उथल–पुथल पैदा की है। सामंतों और राजपूतों के प्रजा से सम्बन्ध और उनमें बदलाव कई समस्याएं पैदा कर गए हैं। परम्परागत सामंती व्यवस्था का यह परिवर्तन संरचनात्मक व्यवस्था का महत्वपूर्ण परिवर्तन है। इसी प्रकार से व्यावसायिक परंपराओं में बदलाव आया है। राजस्थान से एक बड़े व्यवसायी वर्ग (मारवाड़ी) ने देश और राजस्थान की सामाजिक संरचना में अपना योगदान दिया है। आज राजस्थान में संवैधानिक प्रक्रियाओं द्वारा जो बदलाव आ रहा है उसने इन कतिपय पूर्व स्थापित संस्थाओं तथा संस्कृतियों को प्रभावित किया है। इस पर विशिष्ट चर्चा होनी चाहिए। राजस्थान के समाजशास्त्रीय अध्ययनों के लिए इसीलिए क्षेत्रीयता का प्रश्न महत्वपूर्ण है। कुछ अर्थों में यह क्षेत्रीयता सामंतवाद से प्रभावित है। क्षेत्रों का अपना अलग इतिहास है, सामाजिक संरचनाएं हैं, विशिष्ट आर्थिक व्यवस्थाएं हैं और सांस्कृतिक परिवेश हैं। राजस्थान के समाजशास्त्र को अपने विशेष परिवेश के कारण नई सैद्धान्तिक व्यवस्थाओं और पद्धतियों को विकसित करने की आवश्यकता है। राजस्थान की सामाजिक संरचना पर अध्ययन बहुत कम हुए हैं इसीलिये बहुत आगे जा कर समाजशास्त्रीय अध्ययनों की आवश्यकता है।

Prof. B.K. Nagla, 106, University Flats, MDS University, Rohtak